'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता पर अनुसंधानपरक दृष्टिकोण

Dr. B. J. Patel
Associate Professor in Hindi
Smt. B. V. Dhanak College, Bagasara

हमारा हिन्दी साहित्य अनेक बेनमून ग्रन्थों के कारण विशेष चर्चा में रहा है। 'पृथ्वीराज रासो' एक ऐसा ही हिन्दी का आदि महाकाव्य है, जो रासो काव्य परम्परा में मुकुटमणि तक माना गया है। अपनी विशालता में तो वह अनुपम-अद्वितीय है ही, परन्तु भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से भी उच्च कोटि का महाकाव्य है। यह अपने युग की प्रतिनिधि रचना है। 'पृथ्वीराज रासो' इस युग का गौरवग्रन्थ है। इसमें पृथ्वीराज चौहान की कीर्तिगाथा 69 समयों (अध्यायों) में वर्णित है।'[1] इस स्मरणीय ग्रन्थ के चार संस्करण मिलते हैं। सबसे बड़ा संस्करण वह है, जिसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा काशी से हुआ है तथा जिसकी हस्तलिखित प्रतियाँ उदयपुर के संग्रहालय में सुरक्षित है। सभा ने सन् 1585 ई. में लिखित प्रति के आधार पर 'रासो' का संपादन कराया था। इस संस्करण में 69 समय (खण्ड) तथा 16306 छन्द मिलते हैं। द्वितीय रूप में उपलब्ध 'पृथ्वीराज रासो' 7000 छन्दों का काव्य माना जाता है। इसका प्रकाशन नहीं हुआ, किन्तु अबोहर एवं बीकानेर में इसकी प्रतियाँ सुरक्षित हैं, जो 17वीं शताब्दी में लिखी गयी हैं। तीसरा लघु संस्करण 3500 छन्दों का है, जिसमें केवल 19 समय है। इस संस्करण की हस्तलिखित प्रतियाँ भी बीकानेर में सुरक्षित हैं। इनमें सबसे छोटे लघुतम संस्करण में 1300 पद्य हैं।[2] लघुत्तम रूपान्तरण डॉ.माताप्रसाद गुप्त ने 'पृथ्वीराज रासउ' नाम से सम्पादित किया है। बृहत् रूपान्तरण डॉ.श्यामसुन्दर दास, मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या आदि विद्वानों के द्वारा समपादित किया गया है। हम यहाँ जो भी चर्चा करेंगे वह बृहत् रूपान्तरण को लेकर ही करेंगे। 'पृथ्वीराज रासो' ग्रन्थ जितना प्रसिद्ध है, उतना ही विवादास्पद भी रहा है।

'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता पर विद्वानों के तीन पक्ष :

रासो के सम्पूर्ण रूप में प्रकाशित हो जाने का परिणाम यह हुआ कि वह लोगों के लिए अध्ययन का विषय बन गया और उसके पक्ष-विपक्ष में आलोचकों के दो दल हो गए, साथ ही साथ एक तीसरा दल भी उभरकर सामने आया। पहला पक्ष उसे ऐतिहासिक दृष्टि से भी प्रामाणिक मानता था और सिद्ध कर रहा था तथा दूसरा पक्ष उसे अप्रामाणिक और जाली सिद्ध करना चाहता था, किन्तु इन दोनों के साथ तीसरे पक्ष के कुछ विद्वान ऐसे भी थे जो नई शोधों के बाद यह मानने लगे कि रासो का रचयिता चन्द अवश्य था, पर वह मूल रासो के प्रक्षेपजाल के आवरण में विलुप्त हो गया है, अतः वे बृहत् रूपान्तरण की घटनाओं को सत्य मानने को प्रस्तुत नहीं थे।

'पृथ्वीराज रासो' के बारे में हकारात्मक सोच रखने वालों में प्रथम पक्ष के पक्षधर-गार्सा द तासी, जान बीम्स, एम.एस.ग्राउस, रुडोल्फ हार्नली, मो.वी. पंड्या, मिश्रबन्धु, अयोध्यासिंह उपाध्याय, पं.मथुराप्रसाद दीक्षित आदि शामिल थे। इनका मानना था कि 'पृथ्वीराज रासो' प्रामाणिक है। इनके अलावा जार्ज ग्रियर्सन भी रासो को प्रामाणिक मानने वालों में थे, पर बाद में उन्होंने अपना मत बदल दिया था और वे उसे जाली मानने लगे थे।

दूसरा पक्ष 'पृथ्वीराज रासो' को अप्रामाणिक और जाली सिद्ध करना चाहता था, उन विद्वानों में थे-श्री मुरारीदान, कविराज श्यामलदास, डॉ.गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पं.मोतीलाल मेनारिया, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, अमृत शील आदि।

तीसरा पक्ष ऐसा था, जो इन दोनों से अलग मत रखता था। मुनि जिनविजय जी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, मोहन सिंह, डॉ.विपिनविहारी त्रिवेदी, डॉ.दशरथ शर्मा, अगरचन्द नाहटा, डॉ.दशरथ ओझा, डॉ.माताप्रसाद गुप्त, डॉ.वेणीप्रसाद शर्मा आदि उसके साहित्यिक महत्त्व को स्वीकारते हुए मानते थे कि रासो का रचयिता चन्द ही था;

किन्तु प्रक्षिप्त अंशों के आधिक्य से मूल रासो की खोज दुर्लभ हुई, अतः उसकी ऐतिहासिकता को ये विद्वान असंदिग्ध नहीं मानते।

'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता पर संदेह :

'पृथ्वीराज रासो' की ऐतिहासिक घटनाओं की प्रामाणिकता को लेकर विशेष परिमाण में आक्षेप लगाये गए हैं। जैसा कि हमें ज्ञात है, वीर पूजा हमारे भारतीय संस्कृति की देन है। जब वह वीर अपनी ही जाति का गौरव होता है, तो उसके प्रति श्रद्धा की भावना और बढ़ जाती है। यही बात महान हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज पर भी लागू होती है। अपने शौर्य, पराक्रम और विदेशी आक्रान्ताओं के साथ लोहा लेने के कारण अपनी मृत्यु के कुछ वर्षों के उपरांत ही वे जन-मन में राष्ट्रीय वीर के रूप में प्रतिष्ठित हो गये। अपने ही राजकवि और मित्र चन्द द्वारा लिखित चरित्र चारण-भाटों के हाथ आकर एक बृहदाकार महाकाव्य का रूप ले बैठा। मुनि जिनविजय जी ने लिखा है-"चन्द कवि निश्चयतया एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था। उसी ने पृथ्वीराज के किर्तीकलाप का वर्णन करने के लिए देश्य प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी जो 'पृथ्वीराज रासउ' नाम से प्रसिद्ध हुई।"[3] परिणाम यह हुआ कि ऐतिहासिक तथ्यों से अपरिचित चारणों ने अपनी अतिरंजित कल्पनाओं से कुछ ऐसी घटनाओं को जोड़ दिया, जिनके समर्थन में इतिहास अपनी साक्षी देने में असमर्थ था।

सुविख्यात जर्मन विद्वान डॉ.बूलर जो कि भारत में संस्कृत ग्रन्थों की खोज रहे थे, उन्हें अचानक 'पृथ्वीराज विजय' की एक खण्डित प्रति मिली। उन्होंने अपने शिष्य डॉ.जेम्स मॉरिसन को वह प्रति 'पृथ्वीराज रासो' से तुलना करने के लिए दी। गहरे अध्ययन के पश्चात् डॉ.मॉरिसन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ऐतिहासिक दृष्टि से 'पृथ्वीराज विजय' प्रामाणिक है, 'पृथ्वीराज रासो' नहीं। रासो के तथ्य इतिहास की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। डॉ.रामकुमार वर्मा का कहना है-"... बहुत से प्रबन्ध-काव्य और वर्णनात्मक काव्य लिखे गये जिनमें 'पृथ्वीराज रासो' का भी नाम लिया जाता है, यद्यपि इसके प्रामाणिक होने में अभी हिन्दी के विद्वानों को सन्देह है।"[4]

संभवतः 'पृथ्वीराज विजय' की खोज ने रासो सम्बन्धी शोध में एक नयी दिशा खोली। डॉ.माताप्रसाद गुप्त का इस सम्बन्ध में कहना है-"सन् 1875 ई. में प्रसिद्ध विद्वान डॉ.बूलर को संस्कृत ग्रन्थों की खोज में काश्मीर में 'पृथ्वीराज विजय' की एक अति खण्डित प्रति प्राप्त हुई थी, जिसने 'पृथ्वीराज रासो' की ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को एकदम समाप्त कर दिया। तब से उसकी प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने के प्रयत्न होते आ रहे हैं, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि वे असफल ही रहे और रासो के प्राप्त रूपों में से किसी के आधार पर भी उसकी ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करना कभी भी संभव होगा, यह आशा नहीं करना चाहिए, क्योंकि रासों के प्राप्त सभी रूपों में चिन्त्य अनैतिहासिक तत्त्व मिलते हैं। कुछ विद्वानों ने उसकी इस त्रुटि का समाधान यह बताकर करना चाहा कि वह काव्य है इतिहास नहीं है। किन्तु 'विजय' भी तो काव्य है, फिर भी उसमें 'रासो' जैसे अनैतिहासिक तत्त्व नहीं मिलते।"[5]

'पृथ्वीराज रासो' की प्रमाणिकता पर संदेह करने के लिए जो मुख्य तर्क दिये जाते हैं, वह निम्नांकित हैं-

- 'रासो' में उल्लिखित घटनाएँ और नाम इतिहास से मेल नहीं खाते। इसमें परमार, चालुक्य और चौहान क्षत्रियों को अग्निवंशी माना गया है, जबकि वे सूर्यवंशी प्रमाणित हुए हैं।
- पृथ्वीराज का दिल्ली गोद जाना, संयोगिता स्वयंवर आदि घटनाएँ इतिहास से मेल नहीं खातीं।
- अनंगपाल, पृथ्वीराज तथा बीसलदेव के राज्यों के संदर्भ भी अशुद्ध हैं।
- पृथ्वीराज की माँ का नाम कर्पूरी था, जो 'रासो' में कमला बताया गया है।
- पृथ्वीराज की बहिन पृथा का विवाह मेवाड़ के राणा समरसिंह के साथ बताया गया है, जो अशुद्ध है।

- पृथ्वीराज द्वारा गुजरात के राजा भीमसिंह का वध भी इतिहास-सम्मत नहीं है।
- 'रासो' में पृथ्वीराज के चौदह विवाहों का वर्णन है, जो इतिहास से मेल नहीं खाता।
- पृथ्वीराज के हाथों गोरी की मृत्यु की सूचना भी इतिहास-सम्मत नहीं है।
- पृथ्वीराज द्वारा सोमेश्वर का वध भी इतिहास-सम्मत नहीं है।
- 'रासो' में दी गयीं तिथियाँ अशुद्ध हैं। सभी तिथियों में इतिहास की तिथियों से प्रायः 90-100 वर्षों का अन्तर है।[6]

श्री मुरारिदान चारण और कविराज श्यामलदास का अप्रामाणिकता सम्बन्धी मत :

इन दोनों विद्वानों ने 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता पर शंका उठाई। कविराज ने 'द एण्टिक्विीज आथेण्टिसिंटी एण्ड जैन्युइननैस ऑफ द एपिक काल्ड पृथ्वीराज रासो एण्ड कासनली ऐस्क्राइब्ड टू चन्द बरदाई' शीर्षक से एक लेख लिखा और रासो की घटनाओं, संवत, ऐतिहासिक व्यक्तियों तथा भाषा आदि की विशद परीक्षा की। उन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' को प्रामाणिक रचना नहीं माना। उसका निर्माण चन्द के कई शताब्दियों के बाद हुआ। इस काव्य के रचना कोठारिया या बेदला के चौहानों के किसी भाट ने की होगी। उस भाट ने चन्द के नाम से लिखा और नाम इसलिए छिपाया कि लोग उस पर विश्वास नहीं करेंगे। 'पृथ्वीराज रासो' चन्द के द्वारा अथवा पृथ्वीराज के समय में नहीं लिखा गया। इतना निश्चित है कि 'पृथ्वीराज रासो' राजपूताना में लिखा गया।[7]

डॉ.गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का अप्रामाणिकता सम्बन्धी मत :

राजस्थानी इतिहास के गहन अन्वेषक और पुरातत्त्वविद् डॉ.ओझा ने रासो का गहन अध्ययन किया और 'पृथ्वीराज रासो का निर्माण-काल' शीर्षक से एक लेख लिखा। उनके ग्रन्थ सम्बन्धी निष्कर्ष इतने पैने थे कि यह आम धारणा हो गई कि सचमुच ही रासो एक जाली ग्रन्थ है। डॉ.ओझा के निष्कर्ष-

- समरसिंह के पौत्र कुम्भा का वीदर के शाह के यहाँ आश्रय तथ्य-विरुद्ध है।
- संयोगिता स्वयंवर की कथा अनैतिहासिक है।
- अनंगपाल द्वारा पृथ्वीराज को गोद लिया जाना असत्य है।
- मेवात के मुगलराजा मूगलराय की पराजय कपोल कल्पना है।
- शब्दवेधी बाण द्वारा शाह का वध कल्पनामात्र है।
- 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा भी 13वीं शती की नहीं, वह 16वीं के आसपास की प्रतीत होती है।[8 109]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का अप्रामाणिकता सम्बन्धी मत :

आचार्य शुक्ल जी ने भी रासो पर चल रहे विवाद का सम्यक् परीक्षण करते हुए अपना निर्णय प्रामाणिकता के विरुद्ध दिया- "बात संवत् की ही नहीं है। इतिहास-विरुद्ध कल्पित घटनाएँ जो भरी पड़ी हैं उनके लिए क्या कहा जा सकता है? माना कि रासो इतिहास नहीं है, काव्य-ग्रन्थ है। पर काव्य-ग्रन्थों में सत्य घटनाओं में बिना किसी प्रयोजन के उलट-फेर नहीं किया जाता। जयानक का 'पृथ्वीराज विजय' भी तो काव्य ही है, फिर उसमें क्यों घटनाएँ और नाम ठीक-ठीक हैं? इस सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त और कुछ कहने की जगह नहीं कि यह पूरा ग्रन्थ वास्तव में जाली है।"[9]

डॉ.मोतीलाल मेनारिया का अप्रामाणिकता सम्बन्धी मत :

- चन्द वरदाई पृथ्वीराज का समकालीन नहीं था।
- 'पृथ्वीराज विजय', 'हम्मीर महाकाव्य', 'सुर्जन चरित्र' आदि ग्रन्थों में उल्लेख न होने के कारण 'पृथ्वीराज रासो' को 18वीं शताब्दी से पहले की रचना नहीं कहा जा सकता।

- 'पृथ्वीराज रासो' की प्राप्त हस्तलिखित प्रतियाँ सबकी सब संवत् 1700 के बाद की हैं।
- सबसे प्राचीन रासो की प्रति उदयपुर के राजकीय पुस्तकालय की संवत् 1760 की है।[10]

यदि इन्हीं तथ्यों को अन्तिम प्रमाण के रूप में मान लिया जाए, तब तो 'पृथ्वीराज रासो' को अप्रामाणिक रचना ही कहा जा सकता है, जैसा कि कई विद्वानों ने यही माना है; किन्तु दूसरे पक्ष के तर्क भी इस सम्बन्ध में विचारणीय है-

'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता पर हकारात्मक तर्क :

- डॉ.दशरथ शर्मा का मत है कि इसका मूल रूप प्रक्षेपों में छिपा हुआ है। इधर जो लघुत्तम प्रतियाँ मिली हैं, उनमें इतिहास सम्बन्धी अशुद्धियाँ नहीं हैं।
- घटनाओं में 90-100 वर्षों का अन्तर है, वह संवत् की भिन्नता के कारण है। मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने 'अनन्द संवत्' की कल्पना की है और उसके अनुसार तिथियाँ भी शुद्ध सिद्ध होती है।
- डॉ.हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि 'पृथ्वीराज रासो' में 12वीं शताब्दी की भाषा की संयुक्ताक्षरमयी अनुस्वारान्त प्रवृत्ति मिलती है, जिससे यह 12वीं शताब्दी का ग्रन्थ सिद्ध होता है।
- 'रासो' इतिहास-ग्रन्थ न होकर काव्य-रचना है, अतः उसमें इतिहास का सत्य खोजना और उसके न मिलने पर उसे अप्रामाणिक घोषित करना अनुचित है।
- डॉ.हजारीप्रसाद जी का यह मत भी है कि 'पृथ्वीराज रासो' की रचना शुक-शुकी-संवाद के रूप में हुई थी। अतः जिन सर्गों में यह शैली नहीं मिलती, उसे प्रक्षिप्त मानना चाहिए। यदि यह तर्क मान लिया जाये, तो वे ही अंश प्रायः प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं, जिनमें इतिहास-विरुद्ध तथ्य हैं।
- जिन लोगों नें 'रासो' में अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग देखकर उसे जाली ग्रन्थ माना है, उसके विरुद्ध यह तर्क दिया जाता है कि चन्द लाहौर का निवासी था। वहाँ उस समय मुसलमानों का प्रभाव आ चुका था, अतः उसकी भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों का मिश्रण होना सहज है।[11]

यहाँ जो भी तर्क प्रस्तुत हुए हैं, वह इस काव्य की प्रामाणिकता के लिए उचित कसौटी नहीं बन सकते। एक बात यह भी ध्यातव्य है कि न सिर्फ 'पृथ्वीराज रासो' बल्कि 'रामचरितमानस', 'सूरसागर' एवं 'बीजक' आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर भी यदि विभिन्न प्रकार के तर्क दिए जाये तो, उनकी अप्रामाणिकता भी किसी-न-किसी सीमा तक सन्देह का विषय बन सकती है। 'रामचरितमानस' में तो प्रक्षिप्त अंश स्वीकार किये भी जाते हैं। कई ऐसे पद भी दृष्टव्य हैं, जो सूर और मीरा दोनों के नाम से प्रसिद्ध है। अतः प्रक्षिप्तांशों या इतिहास विरुद्ध कथनों के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' को अप्रामाणिक मानना उचित नहीं है। कवि चन्द ने पृथ्वीराज के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं जिस रूप में सजीव वर्णन किया है, उसे देखकर तो यही अंदाज लगाया जा सकता है कि वह पृथ्वीराज का समकालीन रहा होगा। इसलिए कई विद्वान रासो को अप्रामाणिक घोषित नहीं करते। यदि इस विवाद में सत्यांश है भी तो वह यही है कि 'पृथ्वीराज रासो' में पर्याप्त मात्रा में प्रक्षिप्त अंशो का समावेशन भी हुआ है।

'पृथ्वीराज रासो' का महत्त्व :

'पृथ्वीराज रासो' एक चरितकाव्य है। इसका नायक पृथ्वीराज लोककथाओं का नायक हो गया। महाकवि चन्द उसका परम सखा और राजकवि था। उसने 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य द्वारा उनकी कीर्ति का अमर गायन किया। 'पृथ्वीराज रासो' को हम तत्कालीन समय की प्रतिनिधि रचना कह सकते हैं। 'रासो'कार ने अपनी ओजस्विनी वाणी में युगीन वातावरण को तादृश कर दिया है।

'पृथ्वीराज रासो' की वस्तुयोजना :

'पृथ्वीराज रासो' का कवि चन्द पृथ्वीराज के सम्पूर्ण जीवन की कथा को नहीं कहना चाहता है, वह एक प्रकार से कथा-नायक के जीवन के अन्तिम वर्षों की कथा को ही अपनी रचना का विषय बनाना चाहता है। 'रासउ' की सम्पूर्ण कथा इस प्रकार सम्यक् रूप से सर्गों में विभाजित है कि वह भी उसके कवि का प्रबन्ध-कौशल सूचित करती है, लघुत्तम पाठ में सर्ग विभाजन नहीं है; किन्तु उसमें छन्दों की क्रम-संख्या तक नहीं है, इसलिए 'रासउ' के मूल रूप में भी स्थिति यही रही होगी यह कल्पना करना उचित नहीं होगा। प्रस्तुत संस्करण का सर्ग-विभाजन 'रासउ' के समस्त शेष पाठों के अनुसार किया गया है-केवल कथा की भूमिका का छन्द मंगलाचरण के साथ रखा गया है, जो शेष पाठों में किसी स्वतंत्र सर्ग में है, और पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध उसको प्रबन्ध-कल्पना के अनुसार पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध में विभक्त कर दो सर्गों में रखा गया है जो लघु में तीन सर्गों में तथा शेष पाठों में प्रायः एक ही सर्ग में आता है। इस सर्गों की कथाएँ परस्पर इतनी अलग-अलग हो जाती हैं कि यह मानना असंभव हो जाता है कि 'रासउ' के कवि के मन में कोई सर्ग-कल्पना नहीं थी। सर्गों के नामों के सम्बन्ध में अवश्य लघु, मध्यम तथा बृहत् पाठों में प्रायः कोई साम्य नहीं है, और सर्गों के बीच-बीच में प्रक्षिप्त कथाओं के आने के कारण नाम परिवर्तन होता रहा होगा, यह आसानी से समझा जा सकता है।

'पृथ्वीराज रासो' में वस्तुवर्णन का आधिक्य पाया जाता है। कवि ने बड़ी तन्मयता से नगरों, वनों, सरोवरों, किलों आदि का वर्णन किया है। युद्ध-क्षेत्र के दृश्य तो अद्भुत प्रतिभा का परिचय देते ही हैं, कवि ने समय और क्रिया को एक साथ बिम्बों में बाँधकर रंग और ध्वनियों को भी रूपायित कर दिया है। भाव, वस्तु और ध्वनि की सम्मिलित प्रभावान्विती के उदाहरण 'पृथ्वीराज रासो' में भरे पड़े हैं। नारी-सौंदर्य का एक चित्र देखिए-

मनहुँ कला ससिभान कला सोलह सो बन्निय।
बाल बैस, ससि ता समीप अमृत रस पिन्निय ।।
विगसि कमलस्रिग, भ्रमर, बेनु, खंजन मृग लुट्टिय।
कीर, कीर, अरु बिम्ब मोति नखसिख अहिघुट्टिय ।।[12]

'पृथ्वीराज रासो' वस्तुतः वीर रस का काव्य है। इसमें वीर रस के आश्रय महाराज पृथ्वीराज हैं। वीर और श्रृंगार रसों के पोषण के लिए आवश्यकतानुसार अन्य रसों की भी योजना की गई है और उनके वर्णन में भी कवि ने उतनी ही तन्मयता दिखलायी है। वीर रस के प्रसंग इतने सजीव हैं कि पढ़ने या सुनने वाले स्वयं उत्साह और उमंग से भर उठते हैं। सेना की शस्त्र-सज्जा, सैन्य प्रमाण, व्यूह-रचना और युद्ध-वर्णन अत्यन्त प्रभावोत्पादक हैं।

'पृथ्वीराज रासो' की भाषा के सम्बन्ध में भी विवाद है। वस्तुतः यह काव्य पिंगल शैली में लिखा गया है जो ब्रज भाषा का वह रूप है, जिसमें राजस्थानी बोलियों का मिश्रण है। कवि ने तत्कालीन सभी प्रचलित शब्दों का स्वतंत्रता से प्रयोग किया है। शब्द-चयन रसानुकूल है, अतः वीर रस के चित्रणों में प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं। जहाँ तक भाषा की शक्ति का प्रश्न है, कवि ने अभिधेय भाषा को भी पर्याप्त प्रभावशाली रूप दिया है।[13] लाक्षणिक तथा ध्वन्यात्मक शब्दावली ने प्रायः भाषा सौंदर्य की वृद्धि की है। अलंकारों का चन्द ने सहज प्रयोग किया है। शायद ही कोई अलंकार ऐसा हो जिसे उन्होंने छोड़ा हो। लगभग अडसठ प्रकार के छन्दों में लिखा गया यह महाकाव्य सभी दृष्टियों से आदिकाल की एक श्रेष्ठ कृति सिद्ध होती है। भाषा की कसौटी पर यदि ग्रन्थ को कसते हैं, तो और भी निराश होना पड़ता है क्योंकि वह बिलकुल बेठिकाने है-उसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं है। दोहों की और कुछ-कुछ कवित्तों (छप्पयों) की भाषा तो ठिकाने की है, पर त्रोटक आदि छोटे छन्दों में तो कहीं-कहीं अनुस्वारांत शब्दों की ऐसी मनमानी भरमार है जैसे कि संस्कृत प्राकृत की नकल की हो। कहीं-कहीं तो भाषा आधुनिक साँचे में ढली सी दिखाई पड़ती है, क्रियाएँ नये रूपों में मिलती हैं। पर साथ ही कहीं-कहीं भाषा अपने असली प्राचीन साहित्यिक रूप में भी पाई जाती है जिसमें प्राकृत और अपभ्रंश शब्दों के साथ-साथ शब्दों के रूपों और विभक्तियों के चिह्न पुराने ढंग के हैं। इस दशा में भाटों के इस वाग्जाल के बीच कहाँ पर कितना अंश असली है, इसका निर्णय असंभव होने के कारण यह ग्रन्थ न तो भाषा

के इतिहास के और न साहित्य के इतिहास के जिज्ञासुओं के काम का है।[14]

'पृथ्वीराज रासो' की चरित्र-कल्पना ही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। एक प्रकार से उसके सभी पात्र असामान्य वीर हैं, किन्तु प्रायः उनके अपने-अपने व्यक्तित्व हैं। उनके वीर कृत्यों के वर्णन में अतिशयोक्ति भी औचित्यपूर्ण लगती है-हरसिंह, कनकबड़, गूजर, नीड़र राठौर, कन्ह, अल्हन, अचलेस, बिंझ, सलष, लषन और पाहार तोमर के प्राणोत्सर्ग, जो अपने राजा की रक्षा में उन्होंने जयचंद की विशाल सेना को रोकते हुए किये हैं-अद्भुत हैं।"[15] महाकाव्य के लक्षण भी 'पृथ्वीराज रासो' में पूर्ण रूप से मिलते हैं, बल्कि यदि देखा जाए तो इन लक्षणों के अनुसार वह और भी अधिक महाकाव्य है-सारी रचना एक महान आदर्श को लेकर नायक के जीवन के एक विस्तृत क्षेत्र में प्रस्तुत की गई है और अन्त में पराजय के बाद भी रचना में नायक के उस आदर्श की-अधर्मी से मातृभूमि को मुक्त कर उसको पुनः हँसने का एक अवसर देने की प्राप्ति दिखाई गई है, अतः इस दृष्टि से यह रचना अवश्य ही एक अमर महाकाव्य के रूप में जीवित रहेगी।

संदर्भ संकेत :

1. श्रीवास्तव, डॉ.रणधीर-हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नई दिल्ली, संस्करण-1995, पृ.75
2. डॉ.नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पैपर बैंक्स, नोएडा (संस्करण-2000), पृ.72
3. मुनि, जिनविजय जी,पुरातन प्रबंध-संग्रह, सिंधी जैन शास्त्र विद्यापीठ, कलकत्ता, संस्करण-1921, पृ. 8, 9
4. वर्मा, डॉ.रणधीर-हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, (छठवाँ संस्करण-1971), पृ.34
5. गुप्त, डॉ.माताप्रसाद-हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, (संस्करण-1960), पृ.112-115
6. डॉ.नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पैपर बैंक्स, नोएडा (संस्करण-2000), पृ.73
7. गुप्त, डॉ.माताप्रसाद-रेवा तट : पृथ्वीराज रासो, साहित्य सदन चिरगाँव, झाँसी, (प्रथम संस्करण-1953), पृ.192
8. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद, पृथ्वीराज रासो का निर्माण-काल, कोशोत्सव-स्मारक-संग्रह (आलेख), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी-वाराणसी, (प्रकाशन वर्ष-1928), पृ. 48, 49, 50
9. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी (तीसवाँ संस्करण-संवत् 2052), पृ.24
10. मेनारिया, डॉ.मोतीलाल, राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, (संशोधित संस्करण-1978), पृ. 65, 67, 85, 91, 97, 109
11. डॉ.नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पैपर बैंक्स, नोएडा (संस्करण-2000), पृ.74
12. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास से उद्धृत, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी (तीसवाँ संस्करण-संवत् 2052), पृ.28
13. डॉ.नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पैपर बैंक्स, नोएडा (संस्करण-2000), पृ.75
14. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी (तीसवाँ संस्करण-संवत् 2052), पृ.24
15. पृथ्वीराज रासो, 8.11-35